इकाई 5 उपनिवेशवाद तथा प्रशासनिक व्यवस्था का विकास: 1857 के पूर्व और पश्चात्

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य इस बात का अध्ययन करना है कि 1857 के पूर्व भारत में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का रूप कैसा था और 1857 के बाद वह कैसा हो गया। इसमें प्रशासन का स्वरूप और उसका विकास दोनों ही सम्मिलित हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- किस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक शक्ति से भू-भागीय शक्ति बन गई।
- किस प्रकार भारत के शासन का सीधा उत्तरदायित्व लिये बिना भारत के मामलों में ब्रिटिश संसद के नियंत्रण का विकास हुआ।
- ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रशासनिक व्यवस्था कैसी थी।
- कैसे धीरे-धीरे भारत अंग्रेजी उपनिवेश बना।
- कैसे और कब भारत पर ब्रिटिश संसद का सीधा नियंत्रण हुआ तथा भारत में अंग्रेजी शासन का क्या परिणाम हुआ, तथा
- किस प्रकार भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ तथा स्वायत्त शासन की मांग की जाने लगी जिसकी परिणति भारत की आजादी में हुई।

5.1 प्रस्तावना

मुगलों ने भारत में प्रशासन का केंद्रीकृत रूप स्थापित किया था। उनकी प्रशासनिक व्यवस्था के सभी विभागों में व्यक्तित्व प्रमुख होता था। किन्तु इस प्रकार का व्यक्ति केंद्रित राज्य समय के थपेड़ों को नहीं सह पाया और ईस्ट इंडिया कंपनी के सामने कमजोर साबित हुआ। प्लासी की लड़ाई में हुई हार ने भारत की दुर्बलताओं का पर्दाफाश कर दिया। उसके बाद अंग्रेज भारत में एक दृढ़ शक्ति के रूप में स्थापित हो गए। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान तथा बाद में सम्राट के शासन के दौरान भारत में अंग्रेजी राज के प्रशासन का स्वरूप क्या था। यहाँ इस बात की चर्चा भी की जाएगी कि प्रशासन की समस्या के पीछे आधारभूत तत्व क्या थे — अर्थात् भारत में ब्रिटिश शासन का स्वरूप कैसा था और उसका लक्ष्य क्या था।

5.2 ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना

ईस्ट इंडिया कंपनी का आरंभ एक व्यापारिक संघ के रूप में हुआ था। इसका आर्थिक स्वरूप भी सिर्फ व्यापारिक संघ के अनुरूप ही था। इसके अंतर्गत आने वाले प्रत्येक मुख्य "कारखाने" अथवा व्यापारिक संस्थान, एक अध्यक्ष तथा उसकी परिषद् के नियंत्रण में होते थे। अध्यक्ष को बाद में गवर्नर कहा जाने लगा। परिषद् में कंपनी के वरिष्ठ कर्मचारी होते थे। नए अथवा कम महत्वपूर्ण कारखाने किसी अनुभवी व्यापारी के नियंत्रण में रखे जाते थे। इस अनुभवी व्यापारी को "फैक्टर" (Factor) कहा जाता था। जिन व्यापारिक कारखानों में अध्यक्ष प्रमुख होता था उन्हें बाद में प्रेसीडेंसी कहा जाने लगा। मद्रास, या बाम्बे तथा कलकत्ता ऐसी ही प्रेसीडेंसीयाँ थी।

कंपनी का अधिकार क्षेत्र बढ़ाने में विभिन्न प्रक्रियाओं का हाथ था। ये थीं — जमींदारी के अधिकारों की प्राप्ति, भू-भागों को जीत कर या उनकी मालगुजारी का अधिकार प्राप्त कर तथा दीवानी का अधिकार प्राप्त करके।

1698 में कंपनी ने सुतांती, कलकत्ता तथा गोविन्दपुर गाँवों की जमींदारी के अधिकार खरीद लिए। 1757 में कंपनी ने quit rent के आधार पर चौबीस परगना पर अधिकार प्राप्त कर लिया जो बाद में कंपनी को ही दे दिया गया।

1760 में मीरकासिम के बर्दवान, चटगाँव तथा मिदनापुर जिले अंग्रेजों को सौंप दिए। मुगल बादशाह शाहआलम ने इसे अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार बादशाह से अनुदान में मिले भू-भाग के संबंध में ब्रिटिश महारानी का सांविधानिक रवैया क्या था, यह तो स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

भारत में रहने वाले अंग्रेजों के ऊपर तो कंपनी को घोषणापत्र द्वारा अधिकार प्राप्त थे किंतु भारतीयों पर कंपनी का अधिकार ऐसे जमींदार का अधिकार था जो स्थानीय फौजदार के अधीन रहता था।

1764 के बक्सर-युद्ध के बाद बंगाल में अंग्रेजों की शक्ति सर्वोपरि हो गई।

5.3 1857 से पूर्व प्रशासनिक व्यवस्था

बंगाल पर अधिकार कर लेने के बाद अंग्रेजों ने वहाँ ऐसा प्रशासन स्थापित करने का प्रयास किया जो उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल होता। 1765 के पूर्व तक बंगाल का नवाब ही प्रशासन संभालता था। सिद्धांत रूप से तो वह मुगल बादशाह का प्रतिनिधि (agent) था किंतु वास्तव में उसके पास पूर्ण अधिकार थे। निजाम के रूप में उसके अधीन कानून और व्यवस्था, सैन्य शक्ति तथा फौजदारी (Criminal Justice) मामलों के विभाग थे, तथा दीवान के रूप में वह राजस्व उगाहने तथा प्रशासन एवं दीवानी मामलों के लिए उत्तरदायी था। 1764 के बक्सर युद्ध के बाद बंगाल में अंग्रेजों की शक्ति सर्वोपरि हो गई। बंगाल के प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश राज में मिला लेने पर भारत कंपनी के लिए तथा इंग्लैंड की सरकार दोनों के लिए ही राजनीतिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती थीं। अतः अंग्रेजों ने मुगल बादशाह से एक आदेश प्राप्त किया जिसके अनुसार उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा में दीवानी अधिकार (भू-राजस्व उगाहने का अधिकार) प्राप्त हो गया। तब भी आरंभ में भू-राजस्व उगाहने का वास्तविक कार्य नवाब के कारिंदे ही करते थे। निज़ामत नवाब के ही हाथों में रही। प्रशासन का यह दोहरा रूप उस समय समाप्त हो गया जब 1772 में कंपनी ने राजस्व वसूली का वास्तविक नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया।

अब कंपनी मुख्य रूप से व्यापारिक शक्ति न रहकर भू-भागीय शक्ति हो गई थी। प्रश्न यह था कि क्या भारत का शासन एक व्यापारिक संघ करेगा जिसका कार्य मुख्यतः अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करना है, या यह शासनाधिकार ब्रिटिश संसद को सौंप दिया जाए।

जैसे-जैसे कंपनी की राजनीतिक शक्ति बढ़ती गई, इसके अधिकारियों द्वारा उस शक्ति का दुरुपयोग भी बढ़ता गया। कंपनी द्वारा भारत में राजनीतिक सत्ता ग्रहण करने की बात पर इंग्लैंड में आपत्ति उठाई गई तथा संसद पर जोर डाला गया कि वह इस मामले में हस्तक्षेप करे। लगातार, युद्धों तथा कंपनी के अधिकारियों की मनमानी के कारण कंपनी घोर आर्थिक संकट में फंस गई थी। कंपनी ने संसद से आर्थिक सहायता के लिए याचना की। संसद इस शर्त पर कंपनी की सहायता करने को तैयार हुई कि भारत तथा इंग्लैंड दोनों ही स्थानों पर कंपनी का प्रशासन ससद के निर्देशन में होगा। इसके लिए 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) पास किया गया।

5.3.1 ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश संसद की तुलना

1773 का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट इस बात का प्रमाण था कि ब्रिटिश संसद भारत के मामलों को नियमित करने के लिए गंभीरता से सोचने लगी थी। इसने भारत के लिए पहली बार एक सर्वोच्च सरकार की स्थापना की जिसका प्रमुख बंगाल में फोर्ट विलियम का गवर्नर जनरल था। उसके साथ चार पार्षद (Counsellors) भी थे जिनको यह अधिकार था कि वे बम्बई तथा मद्रास की प्रेसीडेंसियों पर नजर रखें। प्रेसीडेंसियों को इस बात का अधिकार नहीं था कि वे गवर्नर जनरल और परिषद की आज्ञा के बिना भारतीय राज्यों के साथ युद्ध अथवा संधि कर सकें। इसमें अपवाद हो सकते थे जैसे आपातकाल होने पर अथवा ऐसी स्थिति में जब उन्हें कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स से युद्ध अथवा संधि करने के सीधे आदेश प्राप्त हों। इस ऐक्ट में इस बात की भी व्यवस्था थी कि कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायिक न्यायालय की स्थापना की जाए।

"रेग्यूलेटिंग ऐक्ट" ने कंपनी अधिकृत भारतीय भू-भागों के नागरिक, सैन्य एवं वित्तीय मामलों को चलाने का अधिकार ब्रिटिश संसद को दिया। साथ ही यह इस बात का भी पहला प्रमाण है कि ब्रिटेन की सरकार भारत के मामलों में गंभीर रुचि लेने लगी थी। इस ऐक्ट में कतिपय आधारभूत कमियाँ थीं जिनके कारण वारेन हेस्टिंगज को काफी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी। उसके पार्षद भी उसका साथ नहीं देते थे। इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि गवर्नर जनरल का अपने अधीन प्रेसीडेन्सियों पर कहाँ तक अधिकार है तथा यह भी स्पष्ट नहीं था कि सर्वोच्च परिषद् एवं सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र क्या हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वारेन हेस्टिंगज को अपना प्रशासनिक उत्तरदायित्व निभाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा परिषद् में एक के बाद एक संकट उत्पन्न होते गए।

1781 में कंपनी के मामलों को और अधिक नियंत्रित करने के प्रयास किए गए। नार्थफॉक्स की मिली-जुली सरकार ने गंभीरतापूर्वक यह प्रयत्न किया कि कंपनी की शासन व्यवस्था का पुनर्गठन हो। इस उद्देश्य से दो बिल प्रस्तुत किए गए। चार्ल्स जेम्स फौक्स ने कंपनी की शासन व्यवस्था को ऐसी निरंकुश व्यवस्था कहा "जिसकी मिसाल संसार के इतिहास में नहीं मिलती।" कंपनी ने अपना संरक्षण मंत्रियों के हाथ में दिये जाने पर विरोध प्रकट किया। यह बिल हाउस आफ कॉमन्स में तो पारित हो गया किंतु हाउस ऑफ लार्डस ने इन्हें अस्वीकार कर दिया।

जब विलियम पिट ने प्रधानमंत्री का पद संभाला तो उसने "इंडिया बिल" प्रस्तुत करने का निश्चय किया। पिट को हाउस ऑफ कॉमन्स में कम समर्थन प्राप्त था। साथ ही उसे ईस्ट इंडिया कंपनी की आशंकाओं का भी निवारण करना था। पिट ने कंपनी के साथ बातचीत करके तथा उसकी स्वीकृति से एक ऐसी योजना तैयार की जो भारतीय मामलों पर संसद के नियंत्रण से संबंधित थी। यह पिट के "इंडिया बिल" के नाम से जाना जाता है। अगस्त 1784 में पास होने पर यह बिल कानून बन गया।

इस अधिनियम के अनुसार भू-भागों तथा वाणिज्य के बीच अंतर को बनाये रखना था। भू-भागों के प्रशासन का नियंत्रण संसद की एक प्रतिनिधिक सभा को दिया जाना था जबकि वाणिज्य पर कंपनी का ही अधिकार बना रहना था। भारत में सरकार अब भी कंपनी के नाम पर ही चलाई जानी थी यद्यपि राजनीतिक एवं वित्तीय मामले प्रस्तावित संसदीय सभा के नियंत्रण एवं देखरेख में होने चाहिए थे।

पिट के इंडिया बिल ने नियंत्रण, निर्देशन एवं निगरानी का एक सशक्त साधन प्रदान किया। यही व्यवस्था थोड़े-बहुत फेर बदल के साथ 1858 तक प्रयुक्त होती रही। इस समय तक भारत पर इंग्लैंड की सम्राज्ञी का पूर्व नियंत्रण स्थापित हो चुका था।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध तक ब्रिटिश भू-भागों के प्रशासन का विधिनिर्माण कुछ सीमा तक उपयोगितावादी चिंतन एवं सिद्धांतों से प्रभावित रहा। जैसा कि इरीक ऐरिक स्टोक्स ने अपनी रचना इंग्लिश यूटिलिटेरियन्स इन इंडिया (English Utilititarians in India) में दर्शाया है। इस स्थिति में 1813 में परिवर्तन आया और अब प्रवृत्ति उदारवादी सिद्धांतों की ओर हो गयी। कंपनी का प्रशासन तो कंपनी के ही हाथों में रहने दिया गया किंतु भारतीय व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया। 1833 के एक अधिनियम के द्वारा कंपनी ने भारत में स्थित अपनी समस्त व्यक्तिगत संपत्ति का समर्पण कर दिया तथा इंग्लैंड की सम्राज्ञी की ओर से न्यासी (Trustee) के रूप में इसकी देखभाल करने लगी। भारत में कंपनी का व्यापारिक रूप समाप्त हो गया और वह सम्राज्ञी की राजनीतिक अभिकर्ता (Political agent) बनकर रह गई। भारत सरकार का नये सिरे से गठन किया गया जिससे इसका स्वरूप भारत-व्यापी हो गया।

5.3.2 आर्थिक नीति

ब्रिटिश सरकार ने ऐसी आर्थिक नीति अपनाई जिससे भारत की अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन आया और अर्थव्यवस्था उपनिवेशीय आर्थिक नीति में बदल गई जिसका स्वरूप और गठन ब्रिटेन की आवश्यकताओं के अनुकूल किया गया था। सन् 1600 से लेकर 1757 तक ईस्ट इंडिया कंपनी की भूमिका एक व्यापारिक निगम की थी जो तैयार माल तथा कीमती धातुएँ भारत में लाता था तथा उनके बदले भारतीय माल जैसे कपड़ा लेता था। प्लासी की लड़ाई के बाद कंपनी के व्यापारिक संबंधों में बहुत परिवर्तन आया। अब अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए कंपनी राजनीतिक नियंत्रण का प्रयोग करने लगी थी। भारत को उपनिवेश बनाने में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति का भी बड़ा हाथ रहा। 1793 से 1813 के बीच इंग्लैंड के उत्पादकों ने कंपनी के व्यापारिक विशेषाधिकारों के विरूद्ध आंदोलन छेड़ दिया और अंततः वे भारतीय व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को समाप्त करने में सफल हुए। ब्रिटिश उद्योगपति चाहते थे कि उनका बनाया माल भारत के बाजारों में बिके तथा साथ ही अपने उत्पादन के लिए उन्हें कच्चा माल भी भारत से मिलता रहे।

इस प्रकार गुलामी एवं शोषण की उपनिवेशवादी व्यवस्था ने भारत को संपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को अव्यवस्थित कर दिया।

अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए कंपनी ने अपने अधीन भू-भागों पर और अधिक दबाव डालना आरंभ कर दिया। अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए उसने अभियानों एवं युद्धों का सहारा लिया। इंग्लैंड ने अपने हिस्सेदारों को अधिक से अधिक लाभ देने, ब्रिटिश सरकार को भेंट देने तथा प्रभावशाली लोगों को रिश्वत देने के लिए कंपनी को अतिरिक्त धन की आवश्यकता थी। अतिरिक्त निर्यात (Exports Surplus) के अतिरिक्त 1813 के बाद कंपनी ने होम चार्जेस भी लागू कर दिए और इस प्रकार भारत की संपत्ति को दुहकर इंग्लैंड भेजा जाने लगा। अन्य खर्चों के अतिरिक्त इन तीन चार्जेस में भारतीय ऋण पर ब्याज भी शामिल था। 1858 तक भारतीय ऋण लगभग 695 लाख हो गया था। संपत्ति के इस निर्यात के बदले में भारत को धन अथवा वस्तुएँ कुछ भी उचित रूप से प्राप्त नहीं होती थीं। इस तथ्य को अंग्रेज अधिकारी भी स्वीकार करते हैं कि 1757 और 1857 के बीच भारतीय संपत्ति अनुचित रूप से इंग्लैंड पहुँचाई जाती रही। लारेंस सुलिवन, जो कि कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स का डिप्टी चेयरमेन था, ने कहा कि:

"हमारी व्यवस्था बहुत कुछ स्पंज जैसी है, जो गंगातट से सारी अच्छी वस्तुओं को सोखकर टेम्स के किनारे निचौड़ आती है।"

5.3.3 भू-राजस्व नीति

भारत के विभिन्न भागों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेने के बाद कंपनी ने भू-राज़स्व की वसूली करने के लिए अनेक तरीके अपनाए। ये तरीके स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप थे। अधिकांशतया ये राजस्व कृषि के रूप में होते थे। धीरे-धीरे कंपनी को भारत में प्रणाली की जानकारी हुई। तब उसने विभिन्न क्षेत्रों के लिए दीर्घावधि की नीतियाँ बनाईं। कंपनी का उद्देश्य था अधिकाधिक कर वसूलना। उन्हें कृषि अथवा वहाँ प्रचलित परंपराओं से कोई सरोकार नहीं था। देश के विभिन्न भागों में मुख्य रूप से तीन प्रकार के बंदोबस्त लागू किए गए।

1 **स्थायी बंदोबस्त:** 1793 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं

   क) जमींदार अपने इलाके की संपूर्ण भूमि के स्वामी बना दिए गए। सरकार की ओर से भू-राजस्व की वसूली करना उनका कार्य था।

   ख) जो राजस्व जमींदार वसूल करता था उसके दस में से नौ भाग उसे सरकार को देने पड़ते थे। दसवां भाग वह अपने मेहनताने के रूप में रख लेता था।

   ग) जमींदारों द्वारा सरकार को दिया जाने वाला राजस्व स्थायी और निश्चित होता था। इसलिए जमींदारों को उनके क्षेत्र में पड़ने वाली समस्त भूमि का स्वामी घोषित किया गया।

स्थायी बंदोबस्त ने जमींदार को भू-स्वामी बना दिया। इसने धनी जमींदारों के एक विशेषधिकार प्राप्त वर्ग को [illegible] दिया। जमींदारी प्रथा की उत्पत्ति का श्रेय पूर्ण रूप से अंग्रेज सरकार को ही जाता है। अतः अपने मूल हितों की रक्षा करने के लिए यह वर्ग अपने जन्मदाता अंग्रेजों का समर्थन करने के लिए बाध्य था। बाद में स्थायी बंदोबस्त की व्यवस्था बनारस के कुछ भागों एवं उत्तरी मद्रास में भी लागू कर दी गई। इस व्यवस्था के लागू होने से किसानों के साथ कंपनी का संपर्क बिल्कुल समाप्त हो गया और किसान पूर्ण रूप से जमींदारों की दया पर निर्भर हो गए। भू-राजस्व के स्थिरीकरण का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। यह तदर्थ ही होता था। किसानों और जमींदारों के बीच चले आ रहे दीर्घकालीन संबंधों को अचानक ही समाप्त कर दिया गया था। भू-राजस्व का भार बहुत अधिक था।

ऐसी बात नहीं थी कि जमींदार वर्ग समस्याओं से मुक्त रहा हो। भू-राजस्व की किस्त न चुका सकने की स्थिति में जमींदारियाँ [illegible]ाग कर दी जाती थीं। इससे अब वे लोग भी जमींदार बनने लगे जो वंशपरंपरा से जमींदार नहीं थे। शहरी व्यापारी, [illegible] और साहूकार इत्यादि नीलाम में जमींदारियाँ खरीदने लगे। इन लोगों को भूमि का विकास करने अथवा किसानों [illegible] कल्याण में कोई रूचि नहीं थी। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में अनेक किसान विद्रोह हुए। इन विद्रोहों में प्रमुख थे। 1795 [illegible]त विद्रोह, 1798 का रायपुर विद्रोह, 1799 का बालासोर विद्रोह तथा 1799-1800 के बीच मिदनापुर के आसपास के गावों में होने वाले विद्रोह।

1762-63 में बंगाल से की जाने वाली उगाही की रकम 646, 000 रुपए थी किंतु 1790 तक यह बढ़कर 2680,000 रुपए हो गई। बंगाल जो कभी पूर्व का अन्न भंडार कहा जाता था, लगभग खाली था। वहाँ अब अकाल, भुखमरी मौत और बीमारी का साम्राज्य था। हाउस ऑफ कॉमन्स की विरोध समिति ने 1783 में जो रिपोर्ट दी उसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत है:

"प्रतिवर्ष लगभग 1,000,000 रुपए बंगाल से कंपनी के खाते में जाते हैं जो चीन भेजे जाते थे और यह संपूर्ण राशि चीन से यूरोप की व्यापार में लगा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त शांतिकाल में बंगाल भारत में स्थित उन प्रेसीडेंसियों को नियमित रूप से रसद भेजता है जो अपना बोझ स्वयं उठाने में असमर्थ है।"

2 **रैयतवारी बंदोबस्त:** उन्नीसवीं सदी के आरंभ में मद्रास तथा बम्बई क कुछ क्षेत्रों में रैयतवारी बंदोबस्त लागू किया गया। इसके अनुसार भूमि जोतने वाले को उस भूमि का स्वामी माना जाता था बशर्ते कि वह भू-राजस्व चुकाता रहे। अंग्रेजों ने उन मिरासदारों (ग्रामीण समुदायों के सदस्यों) तथा किसानों को भी मान्यता दी जो सीधे राज्य को कर दिया करते थे। ये मिरासदार छोटे-मोटे जमींदार बन गए थे। किंतु इस प्रथा से भूमि का जो स्वामित्व मिलता था उसका विशेष लाभ नहीं था। इसके तीन कारण थे:

   क) भू-राजस्व की अनुचित दर।
   ख) भू-राजस्व की दर में मनमाने ढंग से वृद्धि करने का सरकार का अधिकार।
   ग) भू-स्वामित्वधारों को हर स्थिति में भू-राजस्व देना ही पड़ता था, भले ही उसकी उपज आंशिक रूप से अथवा पूर्णरूप से नष्ट हो गई हो।

गाँव की चरागाहों एवं परती जमीन पर भी अब राज्य ने अधिकार कर लिया था। पहले इन क्षेत्रों पर ग्राम-समुदायों का अधिकार होता था। इससे भू-राजस्व का भार और बढ़ गया।

3 **महलवारी बंदोबस्त:** जमींदारी का एक और रूप था महलवारी बंदोबस्त। यह व्यवस्था गंगाघाटी, उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों, मध्य भारत के कुछ क्षेत्रों तथा पंजाब में लागू की गई। इसके अनुसार प्रत्येक गाँव के लिए अलग बंदोबस्त होता था। जमींदार अथवा वे घराने जो जमींदार होने का दावा करते थे, उन्हीं के हाथों सरकार यह बंदोबस्त सौंपती थी।

अंग्रेजों ने परंपरा से चली आ रही भू- व्यवस्थाओं में मौलिक परिवर्तन किए। भू-व्यवस्था में हुए इन परिवर्तनों ने भारतीय गाँवों की स्थिरता, स्वायत्तता एवं सातत्य को हिला कर रख दिया।

5.3.4 न्याय व्यवस्था

आरंभिक घोषणा पत्रों मे कंपनी को यह अधिकार दिया गया था कि वह "उचित कानून" बना सकती है, "सांविधानिक आदेश" और "अध्यादेश" जारी कर सकती है तथा एक सीमा तक अपने कर्मचारियों को अपराध के लिए दंडित कर सकती है। किंतु इन घोषणाओं में कंपनी को भू-भाग संबंधी अधिकार नहीं दिए गए थे। 1661 में चार्ल्स द्वितीय ने प्रत्येक फैक्ट्री के गवर्नर तथा परिषद् को यह अधिकार दिया कि वे न केवल अपने कर्मचारियों अपितु उन सब लोगों के फौजदारी (Criminal) और दीवानी (Civil Jurisdiction) मामलों को देखें जो उनके अंतर्गत आते हैं।

दीवानी का अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् कंपनी कुछ सीमा तक तो दीवानी न्याय के लिए उत्तरदायी हो ही गई थी। फौजदारी के मामलों में तो इस्लामी कानून का अनुसरण किया जाता था किंतु दीवानी के मामलों में विभिन्न पक्षों के व्यक्तिगत कानून के अनुसार ही फैसला किया जाता था। दीवानी मामलों की अपील सदर दीवानी अदालत में की जाती थी यानि प्रेसीडेंट और परिषद् में की जाती थी जबकि फौजदारी मामलों की अपील सदर निजामत अदालत में की जाती थी जो नवाब के अधीन थी। फिर भी न्यायिक प्रशासन को संगठित करने की दिशा में पहला कदम वारेन हेस्टिंग्ज ने ही उठाया। उसी ने पहली बार जिले को न्यायिक प्रशासन की इकाई बनाया। प्रत्येक जिले में दीवानी और फौजदारी अदालतों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिलाधीश दीवानी न्यायालय का प्रमुख होता था और फौजदारी न्यायालय में एक भारतीय अधिकारी के साथ दो मौलवी बैठते थे। इन जिला न्यायालयों के ऊपर अपील न्यायालय था जो कलकत्ता में स्थित था। सदर दीवानी अदालत में गवर्नर और परिषद के दो सदस्य होते थे जिनकी सहायता के लिए वित्त विभाग का दीवान तथा प्रमुख कानूनगो इत्यादि होते थे। सदर निजामत अदालत का प्रमुख निजाम का नायब होता था तथा उसकी सहायता के लिए एक मुसलमान अधिकारी और मौलवी होते थे।

1773 के रेगयूलेटिंग ऐक्ट (Regulating Act) के अनुसार बंगाल में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई जो सम्राज्ञी के अधीन था। सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के फलस्वरूप दो विरोधी न्यायिक प्राधिकार बन गए एक ओर सर्वोच्च न्यायालय का तो दूसरी ओर सदर दीवानी अदालत। इसका एक अस्थायी हल तो यह निकाला गया कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्याधीश की नियुक्ति सदर दीवानी अदालत के प्रेसीडेंट के रूप में कर दी गई।

1790 में फौजदारी अपीलों का स्थानांतरण गवर्नर जनरल एवं परिषद् के अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् की सहायता के लिए मुख्य काजी तथा दो मुफ्तियों को मुकर्रर किया गया। यह कदम कार्नवालिस की आम नीति का ही एक हिस्सा था। उसकी नीति सभी उच्च पदों से भारतीयों को हटाकर उनके स्थान पर यूरोपियों को रखने की थी।

कार्नवालिस ने जिला अदालतों को अंग्रेज न्यायाधीशों के अधीन कर दिया। उसने दीवानी न्यायाधीश और जिलाधीश के दो अलग-अलग पद बनाए। इन दोनों के विरूद्ध अपील करने के लिए चार अपील के न्यायालय स्थापित किए गए जो क्रमशः कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद और पटना में स्थित थे। जिला न्यायालयों के नीचे रजिस्ट्रार के न्यायालय थे जिनके प्रमुख यूरोपीय होते थे। साथ ही उनके अधीनस्थ न्यायालय भी थे जिनके प्रमुख भारतीय होते थे जिन्हें मुंसिफ और अमीन कहा जाता था। कार्नवालिस ने शासन व्यवस्था का एक ऐसा ढाँचा तैयार किया जो अगले सौ वर्षों तक भारत की शासन व्यवस्था का आधार बना रहा। इसका आधार था भारत में विदेशी शासन को चलाते रहना तथा इस देश की संपत्ति का दोहन करना।

1801 में गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् का न्यायिक सत्ताधिकार समाप्त हो गया। इसके स्थान पर सदर दीवानी अदालत अथवा दीवानी अपीली न्यायालय की स्थापना की गई और इसमें तीन न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई। सम्राज्ञी के न्यायालयों तथा जमींदारी न्यायालयों की दोहरी नीति सिद्धांत रूप में तब समाप्त हुई जब 1861 में इंडियन हाई कोर्ट एक्ट द्वारा कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में उच्च न्यायालयों की स्थापना हुई। इन न्यायालयों ने सर्वोच्च न्यायालय और सदर न्यायालय दोनों का ही स्थान ले लिया।

नई न्यायिक व्यवस्था की विशेषताएँ थीं : विधि का शासन (rule of law) कानून के सामने सबका समान होना, इस बात की मान्यता कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने वैयक्तिक कानून के अनुसार न्याय पाने का हक है, तथा कुशल एवं प्रशिक्षित न्यायिक वर्ग का विकास।

फिर भी नई न्याय व्यवस्था को दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। इसमें अनेक कमियाँ थीं। फौजदारी मामलों में यूरोपियों के लिए अलग न्यायालय थे यहाँ तक कि अलग कानून भी। उनकी सुनवाई भी अंग्रेज न्यायाधीश करते थे जो कभी-कभी उनका अनुचित पक्ष भी लिया करते थे। दीवानी मामलों में तो स्थिति काफी गंभीर थी। न्यायालय बहुत दूर हुआ करते थे तथा न्याय की प्रक्रिया बहुत लम्बी थी। न्याय बहुत महंगा होता जा रहा था। ग्राम-समितियों एवं पंचायतों का गाँवों में भी कोई महत्व नहीं रह गया था।

5.3.5 ब्रिटिश प्रशासन का प्रभाव

ब्रिटिश प्रशासन के कतिपय लाभ भी थे। इससे कानून और व्यवस्था की स्थापना हुई, स्वतंत्रता में आस्था बनी तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारंभ हुआ। कानून की एक सामान्य व्यवस्था एवं एक जैसे सरकारी न्यायालयों के कारण एकता में वृद्धि हुई। प्रशासन का दूरस्थ एवं निवयक्तिक स्वरूप एक साथ ही इस व्यवस्था का गुण और दोष था। इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि इस व्यवस्था में लोगों की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता का अभाव था।

ब्रिटिश प्रशासनिक नीतियों का परिणाम यह हुआ कि स्थानीय स्वायत्त शासन की देशी संस्थाओं का लोप हो गया तथा प्रशासन के उच्च पदों से भारतीय वंचित हो गए। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश हितों की अनुगामिनी बना देने के अनेक दुष्परिणाम हुए। कलाकार और कारीगर बर्बाद हुए, किसान दरिद्र हो गए, पुराने जमींदारों का पतन हुआ तथा भूस्वामियों के एक नये वर्ग का उदय हुआ। कृषि के क्षेत्र में ठहराव आया और वह पतनोन्मुख हो चली।

अंग्रेजी नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीयों में जो आक्रोश एवं असंतोष सुलग रहा था उसकी परिणति 1857 की क्रांति में हुई।

बोध प्रश्न

टिप्पणी i) अपना उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए स्थान में ही लिखिए।
ii) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइये।

1 वे कौन सी विभिन्न प्रक्रियाएँ थीं जिनके द्वारा कंपनी का अधिकार क्षेत्र बढ़ा?

....

....

....

....

....

2 ब्रिटिश संसद ने भारतीय मामलों को नियमित करने के लिए जो पहला महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किया वह क्या था? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3 स्थायी बंदोबस्त की तीन महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए:

i) ....

ii) ....

iii) ....

4 नई न्यायिक व्यवस्था की तीन प्रमुख उपलब्धियों एवं तीन कमियों के बारे में लिखिए।

....

....

....

....

....

5.4 1857 के बाद प्रशासनिक व्यवस्था

कंपनी की आर्थिक और प्रशासनिक नीतियों ने समाज के सभी वर्गों में व्यापक असंतोष उत्पन्न कर दिया। यही असंतोष अन्य घटकों के साथ मिलकर 1857 के विद्रोह का कारण बना। (इस संबंध में आप इकाई-4 में पढ़ चुके होंगे) इस विद्रोह ने ईस्ट इंडिया कंपनी को हिला दिया। ब्रिटिश सरकार भी इससे चिंतित हुई। ब्रिटेन के राजनीतिक जगत में सभी इस बात पर एक मत थे कि ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि वह भारत का शासन प्रबंध ईस्ट इंडिया कंपनी से ले ले और भारत के प्रशासन का उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण करे। ब्रिटेन की सम्राज्ञी ने 1858 की एक घोषणा द्वारा भारय शासन को सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया।

5.4.1 नई प्रशासनिक व्यवस्था

1858 के अधिनियम के अनुसार भारत को सीधे ब्रिटिश सम्राज्ञी के द्वारा शासित होना था। रानी के नाम पर भारत के शासन का काम इंग्लैंड में एक राज्य सचिव (Secretary of State) द्वारा किया जाना था। इस सचिव की सहायता के लिए पंद्रह

सदस्यों की परिषद् की व्यवस्था थी। इनमें से नौ सदस्य ऐसे होने चाहिए थे जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में कार्य कर चुके हों और जिन्हें भारत छोड़े हुए दस वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। किंतु देश का प्रशासन अब भी मुख्य रूप से गवर्नर जनरल के ही अधीन बना रहा। हाँ, गवर्नर जनरल के पद का नाम बदल कर वाइसराय कर दिया गया। उसकी सहायता के लिए एक कार्यकारिणी परिषद् बनाई गई। कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य विभिन्न विभागों के प्रमुख होते थे तथा गवर्नर जनरल के सलाहकारों के रूप में कार्य करते थे।

1861 के इंडियन कांउसिल ऐक्ट ने गवर्नर जनरल की परिषद् का विस्तार किया। अब इसके सदस्यों की संख्या छह से बढ़ाकर बारह कर दी गई। इस विस्तार का उद्देश्य परिषद् को विधि निर्माण का अधिकार प्रदान करना था तथा इस रूप में इसे इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल कहा जाता था। इसमें विधि निर्माण के लिए भारतीयों का सहयोग भी लिया जा सकता था।

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस ने भारत के प्रशासन में अनेक परिवर्तनों की माँग की। इसके परिणामस्वरूप 1892 का अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम द्वारा कांउसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर सोलह कर दी गई। इस अधिनियम ने कांउसिल को वार्षिक वित्तीय विवरण पर बहस करने का अधिकार भी प्रदान किया। उन्हें बजट की प्रत्येक मद पर मत देने का अधिकार तो नहीं था किंतु वे सरकारी नीति की खुलकर आलोचना कर सकते थे। राज्य सचिव की भारत पर नियंत्रण एवं निगरानी बढ़ी। उसी अनुपात में ब्रिटेन की सरकार की तुलना में गवर्नर जनरल की शक्ति घट गई। नियंत्रण बोर्ड के अध्यक्ष तथा कंपनी के निदेशकों का दोहरा नियंत्रण समाप्त कर दिया गया, तथा संपूर्ण सत्ताधिकार राज्य सचिव को सौंप दिया गया। 1877 के रॉयल टायटिल्स ऐक्ट ने राज्य सचिव के प्रति गवर्नर जनरल तथा उसकी कांउसिल की अधीनता को स्पष्ट कर दिया।

जैसे-जैसे राज्य सचिव की शक्ति बढ़ती गई वैसे-वैसे उसके सत्ताधिकार पर नियंत्रण भी ढीला पड़ता गया। इंडियन कांउसिल का कार्य सलाह देना मात्र रह गया। राज्य सचिव को "महान् मुगल" की तरह सम्मान दिया जाने लगा।

जब भारत के वाइसराय लार्ड मेयो ने अपनी परिषद् के सत्ताधिकार को मनवाने का प्रयास किया तो स्पष्ट रूप से कह दिया गया कि:

"सिद्धांत रूप से भारतीय मामलों का अंतिम नियंत्रण एवं निर्देशन बर्तानवी सरकार के हाथ में हैं, उन अधिकारियों के हाथ में नहीं जिन्हें सम्राज्ञी ने संसद में कानून द्वारा भारत में नियुक्त किया है।"

इन सब बातों को संभव बनाने के पीछे कतिपय कारण थे। 1870 में भारत और इंग्लैंड के बीच सीधी तार लाइन डाल दी गई थी तथा स्वेज नहर के खुल जाने तथा भाप के इंजन वाले ज़हाजों से दोनों देशों के बीच दूरी घट गई थी। इससे यातायात द्वारा तेजी से संबंध जोड़ने में सहायता मिली।

ईस्ट इंडिया कंपनी की समाप्ति कर दिये जाने के बाद इंग्लैंड की सम्राज्ञी ने भारतीय प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत करनी आरंभ कर दी। वास्तव में, यह समय भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विस्तार का समय था।

5.4.2 प्रशासन का विकेंद्रीकरण

विकेंद्रीकरण की दिशा में पहला कदम तो 1861 के अधिनियम के साथ उठ चुका था। इस अधिनियम द्वारा बम्बई तथा मद्रास की प्रेसीडेंसियों को विधि-निर्माण का अधिकार मिल चुका था। किंतु उन्हें किसी अधिनियम को पारित करने के लिए गवर्नर जनरल की अनुमति लेनी पड़ती थी। 1870 में लार्ड मेयो ने पहली बार प्रदेशों को निश्चित धन-राशियाँ प्रदान की जिन्हें वे अपनी इच्छानुसार पुलिस, जेल, शिक्षा, तथा स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्च कर सकते थे। 1877 में और अधिक आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गई। जब लार्ड लिटन ने कुछ अन्य धन भी प्रदेशों को सौंप दिए। यह धन खर्च-भू-राजस्व, आबकारी, सामान्य प्रशासन इत्यादि के लिए थे। 1882 में प्रदेशों को निश्चित धनराशि देने की प्रथा समाप्त कर दी गई। इसके स्थान पर प्रदेशों को कहा गया कि वे अपने प्रादेशिक करों द्वारा एक निश्चित आय की व्यवस्था करे। इन व्यवस्थाओं के अनुसार राजस्व के कुछ स्रोत पूर्णतः तो कुछ अंशतः प्रदेशों को सौंप दिए गए और कुछ केंद्र के लिए सुरक्षित रखे गए। युद्ध और अकालों पर होने वाले खर्च की जिम्मेदारी केंद्र पर थी। यह व्यवस्था 1902 तक बनी रही।

स्थानीय संस्थाएँ (Local Bodies)

वित्तीय समस्याओं के कारण सरकार ने प्रशासन का और भी अधिक विकेंद्रीकरण किया तथा नगर निगमों और जिला परिषदों का कार्यक्षेत्र बढ़ा दिया। विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का आरंभ 1864 में हुआ। आरंभ में अधिकांश सदस्य मनोनीत (Nominated) होते थे तथा जिला मैजिस्ट्रेट उनके प्रमुख होते थे। इन संस्थाओं को अपना खर्च चलाने के लिए राजस्व स्वयं जुटाना था।

1882 के आसपास इस स्थिति में सुधार हुआ। अब स्थानीय संस्थाओं का विकास कुछ शहरों में ही नहीं अपितु समस्त देश में किया जाता था। इन संस्थाओं के निश्चित कार्य होते थे तथा उनकी पूर्ति के लिए उन्हें निश्चित धनराशि प्रदान की जाती थी। अधिकांश मनोनीत सदस्यों का स्थान अब चुने हुए सदस्यों ने ले लिया। सरकारी सदस्यों की संख्या एक तिहाई कर दी गई, शहरी संस्थाओं को स्वतंत्र कर दिया गया तथा गैर-सरकारी लोगों को भी परिषदों में बैठने का अधिकार दिया गया। किंतु इन संस्थाओं पर अब भी सरकारी नियंत्रण कठोर था। मतदान का अधिकार सीमित था तथा गैर-सरकारी सदस्यों की शक्ति बहुत कम थी। जैसा कि बिपन चंद्र ने लिखा है कि:

"कलकत्ता, मद्रास और बम्बई जैसे प्रेसीडेंसी वाले शहरों को छोड़कर, स्थानीय संस्थाएँ ठीक सरकारी विभागों की तरह कार्य करती थीं और उन्हें किसी भी प्रकार स्थानीय स्वायत्त शासन का अच्छा उदाहरण नहीं कहा जा सकता।"

5.4.3 आर्थिक नीति

अंग्रेजों ने भारत की अर्थव्यवस्था का शोषण जारी रखा। जो धन पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के लंदन स्थित कार्यालय के रखरखाव तथा इसके शेयर होल्डरों को आय देने में खर्च होता था वही अब, इंडिया आफिस के सैक्रेटरी पर खर्च होने लगा। कंपनी के सैन्य अभियानों तथा विद्रोहों को दबाने के फलस्वरूप लंदन में पहले ही भारतीय ऋण की मात्रा काफी थी परंतु अब वह और बढ़ गई क्योंकि कंपनी के शेयर होल्डरों को दी जाने वाली मुआवजे की रकम भी भारत सरकार के खाते में जोड़ दी गई। होम चार्जेस के अंतर्गत आने वाले खर्च थे भारत के ब्रिटिश अधिकारियों को दी जाने वाली पेंशन की रकम तथा सेना को प्रशिक्षित करने का व्यय आदि। 1901 में होम चार्जेस की राशि 170.30 लाख पौंड हो गई।

जैसा कि दादाभाई नौरोजी एवं अन्य परवर्ती अर्थशास्त्रियों ने दर्शाया है, होम चार्जेस एवं निजी हुंडियाँ भारतीय निर्यात द्वारा भुनाई जाती थीं। पहले भारत का आर्थिक दोहन व्यापारवादी था, अब वह मुक्त व्यापार के माध्यम से किया जाने लगा। आगे चलकर यही ब्रिटिश भारत के वित्त पूंजीवाद के ढाँचे से जुड़ गया। वास्तव में उन्नीसवीं शती के अंत तक भारत का अतिरिक्त निर्यात ब्रिटिश भुगतानों के संतुलन के लिए अनिवार्य सा हो गया। उन्नीसवीं शती में यूरोप में विकसित होते पूंजीवादी अर्थशास्त्र ने चुंगी-कर की ऊँची दीवारें खड़ी कर दी। अपने माल के निर्यात के लिए ब्रिटेन को बाजार मिलना कठिन हो गया। भारत में मुक्त व्यापार का अर्थ था कि लंकाशायर के कपड़े के लिए भारत में बिक्री के लिए बाजार, साथ ही भारत के अतिरिक्त निर्यात से ब्रिटेन के घाटे में पूर्ति भी होती थी। भारतीय साम्राज्य से ब्रिटेन को सैन्य एवं युद्धनीति संबंधी लाभ तो थे ही, साथ ही उसे आर्थिक लाभ भी था।

अंग्रेजी सरकार ने अनेक प्रकार की संरचनात्मक प्रतिबंध लगाकर देसी उद्योगों पर रोक लगाई तथा उन्हें कुंठित किया। सरकारी नीतियाँ खुले तौर पर ब्रिटिश उद्यमों को प्रोत्साहन देती थी तथा भारतीयों के साथ भेदभाव का व्यवहार करती थी। रेलमार्ग तथा भारवहन के भाड़े भी बंदरगाहों पर होने वाले व्यापार को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से बनाए गए थे। देश के भीतरी भागों में होने वाले व्यापार के अनुकूल नहीं थे। संगठित मुद्रा बाजार भी काफी हद तक अंग्रेजों के कब्जे में था। इसमें एकमात्र अपवाद थे पंजाब नेशनल बैंक तथा बैंक ऑफ इंडिया। विदेशों के साथ होने वाले अधिकांश व्यापार पर अंग्रेजों का तीव्र प्रभुत्व था क्योंकि विनिमय बैंक, आयात-निर्यात कंपनियों तथा जहाजरानी के प्रतिष्ठान उन्हीं के हाथ में थे।

अंग्रेज अपनी इस नीति को उचित ठहराते थे। उनका कहना था कि उन्होंने इस देश में रेलमार्गों, बागानों, खदानों एवं मिलों में पूंजी को लगाया है तथा ये सब बातें भारत को विकास एवं आधुनिकीकरण के मार्ग पर ले जाएँगी। किंतु सच्चाई तो यह है कि अंग्रेजों ने रेलमार्गों की स्थापना अपनी व्यापारिक एवं सामरिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही की थी तथा बागान, खदानें एवं मिल अंग्रेजों के वित्तीय, व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधि के सामंजस्य में सहायक थे। ये सब अंग्रेजों के हाथ में भारतीयों के पूंजीवादी शोषण के साधन थे।

भू-राजस्व नीति एवं वाणिज्य नीति एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं। काफी समय तक सरकार ने कृषि में सुधार करने की दिशा में कोई ठोस प्रयत्न नहीं किए। इस दिशा में एकमात्र सरकारी प्रयास यही था कि 1870 से तकावी का नगण्य ऋण दिया जाने लगा था तथा एक नहर-व्यवस्था लागू कर गई थी जो पंजाब, पश्चिमी संयुक्त प्रांत (यू.पी.) तथा मद्रास प्रेसीडेंसी के कुछ भागों से गुजरती थी। वास्तव में उपनिवेशवादी ढाँचे ने देश को भीतर ही भीतर खोखला कर दिया था। जिसके उदाहरण थे 1870 एवं 1890 के दशकों में पड़ने वाले अकाल।

5.4.4 सैन्य संगठन

1857 के विद्रोह को देखते हुए सेना में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। भारत का प्रशासन इंग्लैंड के सम्राज्ञी के हाथों में जाने के साथ ही कंपनी की सेना को इंग्लैंड की सेना के साथ मिला दिया गया। सेना का पुनर्गठन करते समय अंग्रेजों ने इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया कि 1857 की घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने पाए। इसके लिए अनेक कदम उठाए गए :

i) सेना में यूरोपियों का अनुपात बढ़ा दिया गया (1857 में 40,000 यूरोपिय तथा 215,00 भारतीय थे) बंगाल में यह अनुपात 1:2 तथा मद्रास एवं बम्बई में 2:5 कर दिया गया।

ii) सेना के महत्वपूर्ण अंगों जैसे तोपखाने इत्यादि में भारतीय सैनिकों की संख्या नगण्य रहती थी। बाद में टैंकों और बख्तरबंद गाड़ियों के संबंध में भी यही नीति अपनाई गई।

iii) योद्धा और गैर-योद्धा जातियों के बीच भेद किया गया तथा लड़ाकू माने जाने वाली जातियों को बडी संख्या में सेना में भरती किया गया। बिहार, अवध, बंगाल तथा दक्षिण भारत के जिन सैनिकों ने 1857 के विद्रोह में भाग लिया था उन्हें गैर-लड़ाकू घोषित कर दिया गया। विद्रोह के समय अंग्रेजों का साथ देने वाली जातियों जैसे सिक्खों, गोरखाओं और पठानों को लड़ाकू घोषित किया गया।

iv) सैनिकों में भेदभाव उत्पन्न करने के लिए उन्हें जाति पर आधारित अलग-अलग कंपनियों में रखा गया।

v) सैनिकों में क्षेत्रीय भावना को उभारा गया ताकि वे राष्ट्रीय मुद्दों पर एकजुट न हो सकें। इस प्रकार सेना की एकरूपता को भंग कर दिया गया। भारत से बाहर उन स्थानों के युद्ध में भी भारतीय सैनिकों को लगाया गया जहाँ अंग्रेजों को लाभ था।

5.4.5 प्रशासनिक सेवाएँ

कार्नवालिस ने भारतीयों को अंग्रेजों से निम्न स्तर का दर्जा दिया था। 1833 के चार्टर ऐक्ट तथा महारानी की घोषणा के बावजूद यह स्थिति नहीं बदली। सभी ऊँचे पद यूरोपियों के लिए आरक्षित थे। भारत की प्रशासनिक सेवा के लिए अधिकारियों का

चयन एक प्रतियोगी परीक्षा द्वारा किया जाता था। कहने को तो चयन के द्वार भारतीयों के लिए भी खुले थे किंतु कभी एक या दो से अधिक भारतीय नहीं चुने गए क्योंकि :

- परीक्षा का केंद्र लंदन में था जो भारत से बहुत दूर था।
- परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए ग्रीक, लेटिन एवं अंग्रेजी भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक था। भारतीय इसमें पिछड़ जाते थे।
- पहले परीक्षा की अधिकतम आयु 23 वर्ष थी जो 1859 में घटाकर 19 वर्ष कर दी गई।

इन बाधाओं को हटाने की दिशा में भारतीयों ने जो भी प्रयत्न किए उसका कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

5.4.6 रजवाड़ों के साथ संबंध

1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने अनुभव किया कि भारतीय जनता के असंतोष को रोकने में रजवाड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अतः रियासतों को अंग्रेजी राज में मिलाने की नीति छोड़ दी गई तथा अंग्रेजी साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिए उनका सहयोग प्राप्त करने की योजना बनाई गई। अनेक अधिकार जो पहले रजवाड़ों से छीन लिए गए थे उन्हें लौटा दिए गए तथा यह आश्वासन दिया गया कि यदि वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार बने रहें तो उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचाई जाएगी। किंतु रजवाड़ों को खुली छूट नहीं दी गई थी। सर्वोच्चता की नीति के माध्यम से उन पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता था। कोई भी भारतीय राजा विदेशों के साथ स्वतंत्र रूप से कोई संबंध स्थापित नहीं कर सकता था। रियासतों के रोजमर्रा के कामकाज में भी अंग्रेज अभिकर्त्ताओं (पोलिटिकल ऐजेण्ट) का हस्तक्षेप रहता था। ये अभिकर्त्ता रेजीडेंट्स कहलाते थे। लगभग सभी रियासतों में ब्रिटिश रेजीडेंट्स और मनोनीत (nominated ministers) मंत्री होते थे। उनका काम था अंग्रेजों के हितों की देखभाल करना तथा अंग्रेजी नीतियों को क्रियान्वित करना। राजाओं के उत्तराधिकारियों का निर्णय भी अंग्रेज सरकार के हाथ में था। यदि कोई राजा अंग्रेजों के मनोनुकूल व्यवहार नहीं करता तो वे उसे हटाकर अपने अनुकूल व्यक्ति को राजा बना देते थे। 1873 में बड़ौदा तथा 1891 में मणीपुर के राजाओं को इसी प्रकार हटाया गया था। अन्य रियासतों में भी हस्तक्षेप की नीति अपनाई गई। अंग्रेजों की इन अपमानजनक नीतियों के बावजूद अधिकांश राजा अंग्रेजों का साथ देते थे ताकि उनका राज और विशेषाधिकार बना रहे।

5.4.7 विद्वेषपूर्ण प्रशासन

अपनी प्रशासनिक नीतियों के जरिए अंग्रेजों ने न केवल भारतीय संपदा का दोहन किया और यूरोपियों की श्रेष्ठता स्थापित की वरन् जानबूझकर भारतीयों के प्रति विद्वेषपूर्ण रवैया अपनाया। पहले की इकाइयों में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अंग्रेजी राज के क्या परिणाम हुए। यहाँ पर उन क्षेत्रों का अध्ययन करेंगे जहाँ यह भारत-विरोधी पक्षपात एवं विद्वेष अत्याधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

i) **शिक्षा:** सन् 1833 से अंग्रेजों ने भारत में सीमित शिक्षा को प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई थी। किंतु कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों को स्थापना से उच्च शिक्षा की दिशा में नई प्रगति हुई। किंतु शिक्षा के प्रसार के साथ भारतीयों में जाग्रति आई। अंग्रेजी सरकार के प्रति उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक होने लगा और राष्ट्रीय आंदोलन का संगठन होने लगा। इससे अंग्रेज सतर्क हो गए और उन्होंने उच्च शिक्षा के प्रति विद्वेषपूर्ण रवैया अपना लिया।

ii) **जन-सेवाएँ:** सेना और युद्धों पर तो अंग्रेज-सरकार अनाप-शनाप खर्च करती थी किंतु स्वास्थ्य, सिंचाई, सफाई तथा लोक निर्माण विभाग (पी.डब्लू.डी.) पर किया जाने वाला खर्च नगण्य था।

iii) **समाचार-पत्रों पर पाबंदी:** भारत में छापेखाने के विकास का श्रेय अंग्रेजों को था। किंतु जैसे ही ये जनमत तैयार करने एवं लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य करने लगे। अंग्रेज सरकार ने इस पर रोक लगाने के लिए अनेक कानून बना डाले। 1878 का वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को सीमित करने का ऐसा ही प्रयास था।

iv) **नस्लवादी भेदभाव:** प्रशासनिक एवं सैन्य अधिकारियों की नियुक्ति में अंग्रेज भारतीयों के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करते थे। अंग्रेजों को तो सभी विशेषाधिकार प्राप्त थे जबकि भारतीयों को उनके उचित अधिकार से भी वंचित रखा जाता था।

v) **श्रम कानून:** बागानों एवं कारखानों में वृद्धि होने के साथ ही श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इन श्रमिकों से बहुत अधिक काम लिया जाता था तथा इन्हें बहुत ही अस्वास्थ्यकर और खराब परिस्थिति में भी काम करना पड़ता था। बागानों और कारखानों के मालिक अधिकांशतया अंग्रेज होते थे जबकि वहाँ काम करने वाले श्रमिक भारतीय थे। श्रमिकों की सुख-सुविधा का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था। 1881 एवं 1891 में पारित किए गए फैक्टरी अधिनियम मुख्यतः बाल-श्रम और स्त्रियों से संबंधित थे। इनसे श्रमिकों को अधिक राहत नहीं मिली। बागानों से संबंधित सभी कानून बागान मालिकों के पक्ष में थे और ये सभी मालिक यूरोपिय थे।

प्रशासन के इस विद्वेषपूर्ण रवैये ने भारतीयों को स्वायत्त शासन की मांग करने पर बाध्य किया। किंतु इस मांग का अनुकूल परिणाम नहीं हुआ। इसकी चर्चा हम आगे के अनुच्छेदों में करेंगे।

5.4.8 भारत में स्वायत्त शासन का प्रश्न

सन् 1857 के बाद अंग्रेजों ने भारतीयों को स्वायत्त शासन देने का विचार बिल्कुल ही छोड़ दिया। सर चार्ल्स वुड ने जोकि भारत का सेक्रेटरी ऑफ स्टेट था, कहा कि भारत के लिए प्रतिनिध्यात्मक संस्था व्यावहारिक नहीं है। अंग्रेजों का कहना था

कि भारत कोई राष्ट्र तो है नहीं। उन्होंने भेदभाव पैदा किए। ये भेदभाव मुख्यतः धार्मिक आधार पर प्रोत्साहित किए जाते थे किंतु अपने लक्ष्य के लिए अंग्रेजों ने जातीयता और क्षेत्रीयता की भावनाओं का भी प्रयोग किया। हंटर ने अपनी पुस्तक इंडियन मुसलमान्स (1870) में मुसलमानों का समर्थन करते हुए मुसलमानों की विशिष्टता और पृथकता पर बल दिया तथा उन्हें एकरूप समुदाय की संज्ञा दी। वायसरॉय लार्ड डफरिन ने 1888 में मुसलमानों को "पाँच करोड़ लोगों का राष्ट्र" कहा जिसके धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाज समान थे। वायसरॉय लार्ड एल्गिन को लिखे गए एक पत्र में वुड ने लिखा, "हमने एक भाग को दूसरे के खिलाफ खड़ा करके अपनी शक्ति को बनाए रखा है और हमें यही नीति अपनाए रखनी चाहिए।"

किंतु भारत में घटनाएँ जो मोड़ ले रही थीं उसने अंततः सरकार को जनता की आकाक्षाओं की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य किया। सत्तर का दशक बढ़ती हुई अशांति का समय था। उस अवधि में देश को अभूतपूर्व दुर्भिक्षों का सामना करना पड़ा। 1872 में ए.ओ. ह्यूम ने लार्ड नार्थबुक को सचेत किया कि अब "हमारे और सर्वहारा के बीच केवल संगीनों का फासला रह गया है।"

इस बीच राजनीतिक आंदोलन भी जोर पकड़ता जा रहा था। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और वह लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन रही थी। कांग्रेस ने उत्तरदायी शासन व्यवस्था की मांग के समर्थन में आवाज उठाई। किंतु भारतीयों की आंकाक्षाओं की पूर्ति करने का अंग्रेज सरकार का कोई इरादा नहीं था। सन् 1892 में जब ब्रिटिश सरकार अधिनियम लाने पर बाध्य हुई तो स्पष्ट हो गया कि भारतीयों को सरकार में वास्तविक भागीदारी देने का उसका कोई इरादा नहीं था।

राष्ट्रीय आंदोलन के जोर पकड़ने के साथ ही सरकार को फिर से सुलह की नीति अपनानी पड़ी जिसके परिणामस्वरूप 1909 का अधिनियम पारित हुआ। किंतु इसमें मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की व्यवस्था का प्रावधान किया गया तथा 27 सीटों में से 8 सीटें मुसलमानों के लिए आरक्षित रखी गईं।

भारत के राष्ट्रीय जीवन में गांधी जी के प्रवेश तथा राष्ट्रीय आंदोलन के देशव्यापी हो जाने के पश्चात् ही अंग्रेजों के दृष्टिकोण में अंतर दृष्टिगोचर होने लगा।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपना उत्तर प्रश्न के नीचे दिए गए स्थान में ही लिखिए।
ii) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1 1858 के अधिनियम की तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....
....
....

2 मुक्त व्यापार की नीति ने ब्रिटिश उद्योग की किस प्रकार सहायता की?

....
....
....
....
....
....

3 अंग्रेजों द्वारा किए गए सेना के पुनर्गठन की तीन महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

i) ....
ii) ....
iii) ....

4 उन तीन क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जहाँ भारतीयों के प्रति अंग्रेजी प्रशासन का विद्वेषपूर्ण रवैया स्पष्ट दिखाई देता था।

....
....
....

5 सर्वोच्चता के अधिकार द्वारा अंग्रेज किस प्रकार रजवाड़ों के मामलों में दखल देते थे?

....

....

....

....

5.5 सारांश

ईस्ट इंडिया कंपनी की शुरुआत् एक व्यापारिक निगम के रूप में हुई थी किंतु 1857 तक इसका स्वरूप बदल गया और यह व्यापारिक निगम से राज सत्ता बन गई। तब ब्रिटेन की सरकार ने भारत संबंधी मामलों की व्यवस्था करने के लिए एक योजना तैयार की। यह योजना दासता और शोषण की उपनिवेशवादी योजना थी जिसके परिणामस्वरूप भारत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था विघटित हो गई।

1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटेन की सरकार ने भारत के प्रशासन का उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण कर लिया। विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने भारत में जो नीति अपनाई उसका मुख्य उद्देश्य था इस देश में अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखना। इस बीच भारत में घटनाओं ने ऐसा मोड़ लिया कि सरकार को लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की ओर ध्यान देना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वायत्त शासन के लिए किए जाने वाले जन आंदोलन का नेतृत्व किया। अंत में भारत को स्वाधीनता मिली किंतु देश का विभाजन हो गया।

5.6 शब्दावली

संपत्ति का निचोड़ा जाना (Drain of Wealth): धन का बाहर जाना, यहां भारत के धन का ब्रिटेन को भेजे जाने के अर्थ में प्रयुक्त।

औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution): उद्योग के माध्यम से आर्थिक कायाकल्प इंग्लैंड में तेजी से हुए औद्योगीकरण की प्रक्रिया।

अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction): नियंत्रक सीमा।

उपलब्धि (Acequisition): प्राप्ति।

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 कंपनी का अधिकार क्षेत्र बढ़ाने में अनेक प्रक्रियाओं का हाथ था। ये प्रक्रियाएं थीं — जमींदारी के अधिकार की प्राप्ति, भू-भाग पर अधिकार तथा दीवानी अधिकारी की प्राप्ति। भाग 5.2 भी देखिए।

2 1773 का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट भारत संबंधी मामलों को संकलित करने की दिशा में ब्रिटिश संसद का पहला महत्वपूर्ण कदम था। उपभाग 5.3.1 भी देखिए।

3 जमींदार अपनी जमींदारियों की संपूर्ण भूमि के स्वामी हो गए तथा भू-राजस्व एकत्रित करने में सरकार के अभिकर्ता बन गए। भू-राजस्व की मात्रा निश्चित होती थी तथा उसमें जमींदार को मिलने वाला भाग भी निश्चित होता था।

4 नई न्याय-व्यवस्था की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं, विधि का शासन, कानून के समक्ष सबको समानता, अपने वैयक्तिक कानून के आधार पर न्याय पाने के व्यक्ति के अधिकार को मान्यता, तथा दक्ष एवं प्रशिक्षित न्यायिक श्रेणी का विकास। इसके दोष थे — भारतीयों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार, न्याय की प्रक्रिया का लम्बी और खर्चीली होना। उपभाग 5.3.4 भी देखिए।

बोध प्रश्न 2

1 क) बोर्ड ऑफ कंट्रोल तथा कंपनी के डायरेक्टरों का दोहरा नियंत्रण समाप्त कर दिया गया।
  ख) भारत को अब सीधे साम्राज्ञी द्वारा तथा उसके नाम पर शासित किया जाना था। यह शासन एक स्टेट सेक्रेटरी के माध्यम से होना था।
  ग) गवर्नर जनरल को वायसरॉय की पदवी दे दी गई थी।

2 मुक्त-व्यापार की नीति ने लंकाशायर के कपड़ा उद्योग को तैयार बाजार मुहैया कराया। उपभाग 5.4.3 भी देखिए।

3 अंग्रेजों ने यूरोपियों की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिए सेना का पुनर्गठन किया। उन्होंने सेना में विभाजन को प्रोत्साहन दिया तथा योद्धा जातियों के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। रेफरेंस उपभाग 5.4.4 भी देखिए।

4 शिक्षा, जन-सेवाएँ तथा समाचार-पत्र। उपभाग 5.4.7 भी देखिए।

5 उपभाग 5.4.6 देखिए।